

सम्पादक के नाम

एक 'सफल' असफल बंद

सामान्य वर्ग या तथाकथित सवर्णों का भारत बंद जबरदस्त रूप से सफल रहा! क्योंकि इसमें सवर्णों की सहभागिता बहुत ही कम रही! अब आप कहेंगे कि लोकतंत्र में अगर भीड़ ही कम हो तो फिर कैसी सफलता! आप यह पूछ सकते हैं, पूछना भी चाहिए!

मेरी नजर में इस असफलता के बहुत व्यापक मायने हैं, जो शायद एकांगी राजनीति करने वाली फौज स्वीकार नहीं करेगी!

-पहला यह कि भारतीय लोकतंत्र लगातार मजबूत हुआ है जहां न्याय एवं समानता के लिए हर जाति-धर्म के लोगों में प्रतिबद्धता निरन्तर ही बढ़ी है इसमें दलित-गैर दलित सभी हैं।

दूसरे सामान्य वर्ग या तथाकथित सवर्णों का योगदान भी इस मामले में प्रशंसनीय है कि जो अपने प्रभुत्व और सत्ता की लड़ाई में क्रमशः पिछड़कर बेचैन तो हैं लेकिन उसकी प्रतिक्रिया में घृणा और नफरत का भाव उस समाज में लगातार कम हुआ है।

तीसरा ऐसे तमाम बंद जो कि सवर्णों के द्वारा बुलाई जाती है उसे बहुत ही कम या नागण्य राजनीतिक-बौद्धिक समर्थन हासिल हो रहा है।

चौथा, राजकीय या अन्य लोक संपत्तियों के प्रति जवाबदेही बढ़ी है। कल कहीं से भी टूट-फुट की खबर नहीं मिली।।

तो फिर प्रश्न है कि आगे क्या---

पहला तो यह कि अगर किसी कानून या नीति की समीक्षा का प्रयास किया जा रहा है तो वहां राजनैतिक इच्छाशक्ति दिखाने की जरूरत है, न कि केवल वोट की बदनीयती!

इस भ्रम को दूर किए जाने की जरूरत है कि आरक्षण से सामान्य वर्ग को नुकसान पहुंच रहा है। इसके बदले जरूरी है कि अच्छे और जरूरतमंद वर्ग को ध्यान में रखकर आर्थिक नीतियां बनाई जाए जो रोजगार दे सके क्योंकि पेट की लड़ाई हर वर्ग के लिए उतनी ही महत्वपूर्ण है।

समानता कोई एक-दो दशक में स्थापित नहीं हो सकती इसके लिए लंबे संघर्ष की जरूरत है तो फिर समाज में संतुलन भी बनाकर रखना होगा! आंख के बदले आंख का तर्क समाप्त करना होगा, जो युवा पीढ़ी है ढाई हजार साल के शोषण का बदला चुकाने नहीं आई, उसके सामाजिक परिवेश में इस तरह के तर्क केवल नफरत ही पैदा कर सकते हैं। जरूरत है कि उन्हें मानवीय बनाया जाए।

दलित-संघर्ष अम्बेडकर के समय से बहुत आगे निकल चुका है, बहुत कुछ बेहतर हो रहा है। जरूरत है कि दलित और गैर दलित दोनों ही समावेशी सोच को विकसित करें।

राजनीतिक स्पेस पिछड़े और दलित के लिए निरंतर ही बढ़ा है क्योंकि उन्होंने जाति को कमजोरी नहीं हथियार के रूप में ढाला है। अब जरूरत है उनमें सामाजिक-राजनीतिक और आर्थिक रूप से अति पिछड़े-कमजोर लोगों को भी मुख्यधारा में शामिल करने की लगभग छः हजार जातियों में से कुछ ही हैं जो आरक्षण इत्यादि का लाभ उठा रही हैं तो उनको चिन्हित कर उस तक लाभ को पहुंचाना बहुत महत्वपूर्ण और दुरूह कार्य है जिसके लिए आवाज उठाने का काम लाभ लेने वाले को ही करना होगा।

सोशल मीडिया पर जो मनुवाद-ब्राह्मणवाद के नाम पर नफरत का रायता फैल रहा वह कुछ लोगों को एक क्षणिक स्पेस तो दे रहा लेकिन कई बार अति उतावलेपन में हम ज्यादा ही जजमेंटल हो जाते हैं जिसका खामियाजा वह लोग उठा रहे हैं जिन्होंने अपनी निजी जिंदगी में बहुत हद तक जाति के केंचुल को उतार फेंका है।

अंततः जाति खत्म करने की राजनीति जातिवादी होकर ही लड़ी जा रही है। क्योंकि सब जानते हैं कि परिवर्तन का रास्ता सत्ता से ही होकर जाएगा और सत्ता के लिए वोट चाहिए, इसलिए लोकतंत्र में मुंडियां गिनी जाएंगी (जाति के जाने का सवाल निकट भविष्य में तो नहीं दिखता, लेकिन अगर संतुलन नहीं बनाया गया तो फिर समाज की सरसता, सामासिकता, मधुरता, सहिष्णुता थोड़े संकट में पड़ेगी!

- अभिषेक प्रकाश

कार्ट-अटैक



खबर (दार) झरोखा

विकास नारायण राय

मुस्लिम ब्रदरहुड से बड़ी चुनौती है आरएसएस की

राहुल गाँधी की जर्मनी में आरएसएस की मुस्लिम ब्रदरहुड से तुलना सटीक होते हुए भी ऐतिहासिक सतहीपन का शिकार नजर आती है। सबसे पहले, उन्होंने वैश्विक शांति के नजरिये से आकलन में वही गलती की है जो 2013 में मिश्र में मोहम्मद मोरसी की सरकार का तख्ता पलट होने देने में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा की सहमति थी। पॉलिटिकल इस्लाम, समाज के लोकतान्त्रिक परिदृश्य से ओझल नहीं किया जा सकता; न पॉलिटिकल हिंदुत्व, भारतीय समाज के!

दूसरे, भारतीय समाज को आरएसएस के खतरे से चेताने के लिए उन्हें देशी जमीन का इस्तेमाल करना चाहिये था क्योंकि आरएसएस विश्व शांति को नहीं भारतीय समाज की शांति को खतरा है। आज मिश्र में ब्रदरहुड के साठ हजार लोग जेलों में हैं जबकि भारत में आरएसएस अपने आप में कानून बना हुआ है; इस लिहाज से आरएसएस कई गुना बड़ी चुनौती कहा जाएगा।

अमेरिका में इसी महीने मिश्र में ब्रदरहुड सत्ता पलट पर न्यूयॉर्क टाइम्स के काहिरा में ब्यूरो प्रमुख रहे डेविड किर्कपैट्रिक की किताब 'इनटू द हैंड्स ऑफ द सोलजर्स' का प्रकाशन हुआ है। उनकी थीसिस के अनुसार, ब्रदरहुड शासन में अंततः लोकतान्त्रिक और समावेशी होने की संभावना थी। 2013 में मोरसी के पतन से अरब लोगों के हाथ आया हजारों वर्ष की निरंकुशता से निकलने का एक सुनहरा अवसर चला गया।

किर्कपैट्रिक का निष्कर्ष है कि अरब जगत में राजनीतिक सुधार और लोकतंत्र तभी संभव होंगे जब पॉलिटिकल इस्लाम को इस प्रक्रिया का हिस्सा बनाया जाये। अन्यथा, वहां पॉलिटिकल इस्लाम को दूर रखने का एकमात्र रास्ता रह जाएगा कि समाज से लोकतंत्र को ही दूर रखा जाये। परिणामस्वरूप, क्रांति, अतिवाद और शरणार्थी आयाम चलते रहेंगे जिनका खामियाजा पश्चिम पहले की तरह भुगतता रहेगा।

मुस्लिम ब्रदरहुड, अरब जगत में पॉलिटिकल इस्लाम का अपेक्षाकृत लिबरल रूप है और संघ, भारत में पॉलिटिकल हिंदुत्व का फासीवादी रूप। हालाँकि, दोनों इस अर्थ में समान भी हुए कि दोनों ही अतीतजीवी जीवन दृष्टि समाज पर लादते आये हैं। जैसा कि कांग्रेस आईटी सेल प्रमुख दिव्या स्पंदना ने इंगित किया दोनों ही राज्य शक्ति को नियंत्रित करना चाहेंगे और दोनों ही धर्मनिरपेक्षता के विरोधी रहे हैं।

फिर भी, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उनके समकालीन प्रभाव को आंकड़ें तो कहना पड़ेगा कि जहाँ संघ का दखल भारतीय समाज को हजार वर्ष पीछे ले जाना चाहेगा वहीं ब्रदरहुड अरब जगत को एक हजार वर्ष के सामाजिक पिछड़ेपन से बाहर आने की दिशा पकड़ने में उत्प्रेरक सिद्ध होगा।

भारत में गोरख, कबीर, नानक, मीरा, राममोहन राय, ज्योतिबा, दयानंद, विवेकानंद, पेरियार, गाँधी और अम्बेडकर के प्रभाव ने पॉलिटिकल हिंदुत्व को दकियानूसी दायरों से आजाद कराया। जबकि अरब जगत को अभी मध्य युगीन शरिया के चंगुल से छूटने का इन्तजार है।

जहाँ आरएसएस की बेलगाम कॉर्पोरेट मुनाफे से दोस्ती जग जाहिर है, मुस्लिम ब्रदरहुड का आर्थिक दर्शन भी नव उदारवादी कॉर्पोरेट नीतियों को इस्लामिक जामा पहनाने में सिद्धहस्त है। क्योंकि इस्लाम में 'सूद' हराम है उनके इस्लामिक सिस्टम में इसे 'मुनाफा' बता कर हलाल करार दिया जाता है।

अरब स्प्रिंग का बड़ा हिमायती होते हुए भी ओबामा ने मिश्र की सेना को वहाँ की चुनी हुयी ब्रदरहुड सरकार से सत्ता हथियाने दी तो ब्रदरहुड के प्रति अमेरिका के अविश्वास में, राजशाही, फौज, कठमुल्ला संचालित अरब देशों के सामंती शासन की सहमति शामिल रही होगी। अमेरिकी पूंजी और सैन्य निवेश के भागीदार निरंकुश अरब शासक आइसिस से ब्रदरहुड तक किसी भी ब्रांड के पॉलिटिकल इस्लाम को बर्दाश्त नहीं कर सकते।

भारत के राजनीतिक सन्दर्भ में आरएसएस की मुस्लिम ब्रदरहुड से तुलना को स्वयं कांग्रेस को और गंभीरता से लेने की जरूरत है। वर्तमान परिदृश्य में कालक्रम में तिरोहित हो चुकी इन बातों का क्या महत्व हो सकता है कि दोनों संगठनों की शुरुआत 1920 के दशक में हुयी या दोनों पर कभी प्रतिबन्ध लगा था। महत्व इस विश्वास का होना चाहिये कि भारत एक धर्म निरपेक्ष राष्ट्र होने की नियति से बंधा है जो बदली नहीं जा सकती।

दरअसल, राहुल गाँधी की तुलना से निकली सही चुनौती होगी, भारतीय लोकतंत्र में पॉलिटिकल हिंदुत्व की अनिवार्य उपस्थिति को स्वीकारना। आरएसएस इस उपस्थिति को फासिस्ट रंग देना चाहेगा; इसका मुकाबला जनेऊ दिखाकर नहीं, आरएसएस ब्रांड को लगातार निशाने पर लेकर करना होगा।

मोदी सरकार रक्षा क्षेत्र के साथ-साथ 'इसरो' को भी बेचने की तैयारी में

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी अपने पूंजीपति मित्रों को लाभ पहुंचाने के लिये प्राइवेट सेक्टर को बढ़ावा देना शुरू कर रखा है और देश के अहम सुरक्षा के साथ-साथ स्पेस कार्यक्रमों की भी सुरक्षा व गोपनीयता नजरंदाज हो रही है।

मोदी सरकार ने फ्रांसीसी कम्पनी डास्को एविएशन से 36 राफेल लड़ाकू विमान खरीदने का निर्णय किया और यह करार डास्को तथा अनिल अम्बानी की कम्पनी 'रिलायंस डिफेंस' के बीच हुआ। विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि 10 अप्रैल 2015 को प्रधानमंत्री मोदी ने स्वयं इस डील का ऐलान किया और इस डील से 60 साल की अनुभवी सरकारी कम्पनी हिंदुस्तान एविएशन लिमिटेड (एचएएल) का नाम कट गया जबकि यूपीए के शासन काल में डास्को व एचएएल के बीच 136 राफेल विमान खरीदने का वर्णन हुआ था। गौरतलब है कि भारत में एचएएल को छोड़ किसी भी अन्य कम्पनी को विमान बनाने का अनुभव नहीं है।

मोदी सरकार ने इंडियन स्पेस रिसर्च आर्गनाइजेशन (इसरो) के कामकाज में दखलंदाजी करके इसरो से 27 सैटेलाइट बनाने का काम निजी क्षेत्र की कम्पनियों को दिला दिया। इसरो ने इस निर्णय के लिये हास्यापद तर्क दिया कि इसरो हर साल 12 से 20 सैटेलाइट लॉन्च करना चाहता है, जिसके लिये उसके पास संसाधन नहीं है। इस निर्णय से इसरो के वैज्ञानिकों की नाराजगी बढ़ गई। उनका मानना है कि निजी क्षेत्र अभी स्पेस टैकनॉलोजी के मामले में वांछित दक्ष व कुशल नहीं है। इसरो ने हाल ही में निजी क्षेत्र से एक सैटेलाइट बनवाया था, जो लॉन्च के तुरंत



बाद खराब हो गया।

इसरो की सैटेलाइट बनाने वाली अहमदाबाद स्थित इकाई, स्पेस एप्लीकेशन सेंटर के डायरेक्टर डॉक्टर तपन मिश्रा ने सैटेलाइट बनाने के काम को निजी क्षेत्र में देने पर अपनी नाराजगी जाहिर की थी और जी सेट-11 के लॉन्च में हो रही देरी से भी वे नाराज थे। इसलिये डॉ. मिश्रा को उनके पद से हटाकर सलाहकार बना दिया जिससे प्रशासनिक अधिकारी के रूप में उनकी भूमिका समाप्त हो गयी। इस पर देश के कई प्रख्यात वैज्ञानिकों ने सख्त ऐतराज किया और राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद को पत्र लिखकर इस मामले में हस्तक्षेप करने की अपील की। यह विवाद अभी थमा भी नहीं था कि इसरो ने स्पेस कार्यक्रम के प्रमुख प्रोजेक्ट पोलर सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (वीएसएलवी) तथा स्माल सैटेलाइट लॉन्च व्हीकल (एसएसएलवी) के निर्माण का कार्य भी निजी हाथों में देने

का निर्णय कर लिया जिससे और नाराजगी बढ़ गई। परंतु मोदी सरकार ने वैज्ञानिकों की कोई सुनवाई नहीं की। इससे स्पष्ट होता है कि मोदी सरकार को वैज्ञानिकों की संजीदगी और नाराजगी की कोई परवाह नहीं है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि सैटेलाइट विशेषकर पीएसएलवी तथा एसएसएलवी बनाने का कार्य निजी क्षेत्र में देने से इसरो की वर्षों से बनी बनाई साख मिट्टी में मिल जाएगी और गोपनीय स्पेस कार्यक्रमों की सुरक्षा भी खतरे में पड़ जाएगी। आश्चर्य है कि विपक्ष ने राफेल डील को तो संसद व मीडिया में मुद्दा बना लिया परंतु सैटेलाइट निर्माण के उत्तरदायित्व को निजी क्षेत्र में देने के निर्णय पर विपक्ष तथा मीडिया दोनों ने रहस्यमय चुप्पी साध रखी है।

-डॉ. जुगल किशोर गुप्ता